

गीति-यात्रा

लेखक तारावत्त निर्विरोध

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम]

उदयपुर

प्रकाशक

निदेशक

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम]

उदयपुर

प्रथम संस्करण १९०० प्रतिष्ठा

प्रकाशन वर्ष १९७३ ई

मूल्य छ रुपये

/

मुद्रक

रुपायन प्रस,

गाव बोहदा ३४२ ६०४

प्रकाशकीय

नई पीढ़ी के प्रतिभावान कृतिकारों की सजनशील कृतियों को प्रकाश में लाने की दिशा में राजस्थान साहित्य अकादमी का प्रकाशन मन्त्र अपनी लक्ष्य यात्रा की ओर अग्रसरित है ।

प्रस्तुत है — ' गीत यात्रा । ' श्री तारादत्त ' निर्विरोध ' की एक ताजा काव्यकृति ।

सहजता और सवेदनीयता के धनी कवि श्री तारादत्त की प्रस्तुत काव्य कृति का पाठक समीक्षक-स्वागत करेंगे, यह आशा है ।

डा. देवीलाल पालोवाल

निदेशक

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम], उदयपुर

अनुक्रम

स्वात्म के गीत

कोई एक नाम	९
नये शहर का गीत	११
जुड़ना अथहीन-सजा से	१३
नये हस्ताक्षरों का गीत	१४
एक अलग हाशिया	१५
रोक दिया	१६
बड़ शहर में	१७
सपने बरक गये	१८
प्रदान मोन के	१९
क्षण पढ़ा न गया	२१
दमलम का गीत	२२
बमचारी का गीत	२४
सबधों की बछे	२५

अभी नहीं	२६
मन होता है	२७
कड़वेपन में	२६
जो नहीं बदला	३०
इस बार फिर	३२
छोट छोटे दद	३४
शब्दा के पहरे	३६
सृजन का क्षण	३८
किस गहरे में	३६
दिशाहीन प्रदर्शों के घेरे	४०
गीतों को पक्ष मित्रे	४२
अजाने-स रहते	४४
मेरा मन	४५
ये शब्द किसे दे दू	४६
अनसवरे सवर गये	४७

दूटती सतहों के गीत

होने वाली सुबह का गीत	५१
गीत-यात्रा	५२
अधा बुआ	५३
सर्पों के समाज	५४
एक व्यर्थ गीत	५६
अधी दीड	५७
मरुपल के फूल	५८
गधाते झूल	५६
सक्रांत की बारहसंडी	६०
दृष्टि का रेगिस्तान	६२
कई कई बार	६३
सदभहीन आदमी	६४

अस्थायी नौकरी के चार स्थायी गीत

एक यात्रा नियुक्ति से [१]

आयोजना के वसज [२]

मूल सशोधन [३]

कुत्तियों से कुत्तियों तक [४]

दूसरो पर छा जाने का गीत

इस ओर

कागजी घोट का गीत

पथरीली सतह तक

प्रलय के लिए

विम्ब के उभरने तक

दरपनी अघेरे

पानी का गीत

कई-कई बिब

पबत की भोर

बिब के उभरने तक

स्वात्म के गीत

कोई एक नाम

हारी-सी, उबतायी, सवलायी धाम,
मुझसे ही पूछती है मेरा ही नाम,
कोई एक नाम !

भग-जग मे, जीवन मे
जीवन के क्षण-क्षण मे,
फैली-सी घरती की
वालु के वण-कण मे,
मैं ही तो हूँ,
सागर की लहरा मे
पवत की राहो मे,
भरनो की कल-कल मे
नदियो की बाहो मे,
मैं ही तो हूँ,

अकित हैं मेरे ही चित्र सब लताम !
मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
कोई एक नाम ॥

दरपन के पानी मे
पानी के दरपन मे,
बाहर की दुनिया के
भीतर के दशन मे,
मैं ही तो हूँ,

मानस के मयन मे
 क्षणजीवी—लेखन मे,
 धारा मे नवयुग की
 और मुक्त-चिन्तन मे,
 मैं ही तो हूँ,
 चर्चित हूँ रूप और रंग हुए भ्राम ।
 मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
 कोई एक नाम ॥

अनबोले — दर्दों के
 रिसते-से घावों मे,
 अन-गूजे बोलों के
 दद मे, अभावों मे,
 मैं ही तो हूँ,
 कविता के शहरो में
 गीता के गायों मे,
 छंदों मे, भाषा मे
 शब्दों मे, भावा मे,
 मैं ही तो हूँ,
 मेरे ही काव्य के हूँ अनगिन आयाम ।
 मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
 कोई एक नाम ॥

नये शहर का गीत

खोकर अपनेपन का
निश्चल एकाकीपन,
अनजान नगर में हम
कितने दिन और रहे ?

सब कुछ ही बदला-सा
पहिचान नहीं कोई,
इन्सानो की बस्ती
इसान नहीं कोई,
ये गूमी - सी गलिया
ये नामहीन - रस्ते,
ये बेमानी - बातें
ये लोग बड़े सस्ते,
झूबें तो किस जल में
मापें क्या गहरापन,
अनजान नगर में मन,
कितने दिन और रहे ?

हर क्षण टूटा-टूटा
हर समय एक हलचल,
जीवन से भी ज्यादा
बिखराव और दलदल,
ये लम्बी एक सड़क
ये टेढ़े - मेढ़े घर ,

बुटाए सीत रही
पढना उजले अक्षर ,
परिचय भी दें तो क्या
चाहे क्या अपनावन ?
अनजान नगर मे मन,
मितने दिन और रहे ?

जुड़ना अर्थहीन-सत्ता से

विश्वास नहीं होता है —

अपवचरी बातों के बीने-क्षण ,

बन पायेंगे सुघर-सलीने-क्षण !

अनपुले और बच्चे रंगों के

रूप निखरने से ,

माल - भ्रमित पीढ़ी के अस्मय

कहीं उभरने से ,

विश्वास नहीं होता है —

मूल्यहीन-युग के अनहोने क्षण ,

बन पायेंगे सुघर-सलीने-क्षण !

जुड़ना अर्थहीन-सत्ता से

गलत प्रतीकों से ,

इतना व्यर्थ नहीं था चलना

अपवर लीकों से ,

विश्वास नहीं होता है —

नये काव्य के ये सलझीने-क्षण ,

बन पायेंगे सुघर-सलीने-क्षण !

खुले ध्येय के किसी शब्द का

अर्थ बदलने से ,

सब कुछ कटा-छटा लगता है

आगु निर्वसने से ,

विश्वास नहीं होता है —

अपनेपन से अलग अलीने-क्षण ,

बन पायेंगे सुघर-सलीने-क्षण !

नये हस्ताक्षरो का गीत

हर क्षण है नया - नया
गतिविधिया नयी - नयी,
युग भागे निकल गया
कुछ साधक पिछड़ गये !

लेखन की दिशा नयी, जीवन के बोध नये,
संकेतो की भाषा, मानस के शोध नये,
शब्दों को छाप मिले
रेखाएँ उभर गयी,
युग चिंतन बदल गया
आलोचक पिछड़ गये !

गीतों में गेय नहीं, रस के अनुबोध नहीं,
अधुनातन गीतों में, कविता के छंद नहीं,
पढ़ने को गीत लिखे
आपूरित भावों से,
स्वर - गायन बदल गये
जन- गायक पिछड़ गये !

चेतन के कोण नये, चेतनता लोकमयी,
व्यक्तिगत बिम्बों से प्रतिबिंबित दिशा नयी,
संज्ञाएँ सवर गयी
कुछ नये प्रतीकों से,
संवोधन बदल गया
अधिनायक पिछड़ गये !

एक अलग हाशिया

आ रे आ शब्द तुझे

पर्यं दूं नया ।

नये - नये वाक्य और

अनगिन आयाम ,

क्रियाहीन - वाक्य मे

रहे फयो विराम ?

शब्दों के गाने का

मौसम था

बीत गया !

हट रहे मर्चों के

अंतिम - से सास ,

कितना मे बाटें हम

कोरे विस्वास ?

पडते नहीं, लोग अब

गाते हैं

मसिया ।

सीक - सीक चलने से

बचते हैं पांव ,

बचे - बचे रहने से

जन्मते अमाव ,

लीचना ही होमा हमे

लिखने के पृष्ठ पर

एक अलग हाशिया ।

रोक दिया

देहरी को लापकर
आगन तक पहुँच गया,
परदे ने रोक दिया
जाते हुए वक्ष मे ।

खोया-सा खड़ा रहा, प्रश्न चिह्न बना हुआ,
दुसरे के ध्यान मे अपना ही वदन छुमा,
घोर अषकार बीच
साधे रहा मौन पर
आँखो ने झटक लिया
मन के अतरिक्ष मे ।

ठोकर ने प्रश्न बिया, पीडा ने नाम लिया,
तुलसी के पीछे ने बाहो मे थाम लिया,
अनकिए-से काम मे
परिचित-सा मधुर शब्द
अपनो-सी बात को भी
कह गया विपक्ष मे ।

जैसे ही पाव बढे, ज्याही पदचाप सुनी,
परदे के बध तोड, पास आयी रोशनी,
दृष्टि मे न आया कुछ
खुली आँख बंद लगी
वह भी दूर हो गया
आया जो समक्ष मे ।

बड़े शहर में

जीना ही होता है
अधेरे-उजाले को,
सोचे हुए कम को करने नहीं दिया !

वैसे तो अधिकार मढ़ाया धार-पार,
कभी तोड़ पाया क्या दुर्घों-से बंद द्वार ?
पीना ही होता है
घूट-घूट गरल हमें,
मगर रिक्त प्याले को भरने नहीं दिया !

पूछो, कौन कब भी इतजार खड़ा हुआ,
इतने बड़े शहर में रहता सब पड़ा हुआ,
सीना ही होता है
भीतर का भाव हरा,
अधर और तृष्णा को ढरने नहीं दिया !

अथ आत्म चिन्तन का, दिशाहीन-व्याधिया,
खुशियों का अथ है आंसुओं की सधिया,
कप्यहीन होकर सब
बुनते हैं शब्द-जाल,
अधरो पर गीत अधुरा घरने नहीं दिया !

सपने करक गये

य उजली - सी सतरें
य घुलसनी परतें,
मैं जिसके साथ रहूँ
दोनों विलगाये हैं ।

धुधमाते सहरो की घूमिल - घूमिल छवियाँ,
ज्यो सपने करक गये, ज्यो उमस गयी सुधिया,

य देह और ठिठुरन,
ठिठुरने में भी द्बदन,
मैं किसकी व्यास सहूँ
दोनों विलगाये हैं ।

सपनों के झूले की कितनी कच्ची डोरी,
ज्यो मन की कविता की कोई करले चोरी,

य आतङ्कित मुखड़े,
ये अनबोले दुखड़े,
मैं जिसकी व्यास सहूँ
दोनों विलगाये हैं ।

सपनों में रीत गये, विप के सब कोप भरे,
आपस में डसते हैं, अब मिन बहुत गहरे,

अलगाव और विछुन्न,
य दुनियावी - भटकन,
मैं जिसका हाथ गहूँ
दोनों विलगाये हैं ।

प्रश्न मौन के

क्षण - क्षण पूछ रहे हैं मुझसे
प्रश्न मौन के,
उत्तर देने वाली छवियाँ
मुखर क्यों नहीं ?

बड़ी भीड़ है, लोग जमा हैं
गूँगी नहीं दिशा है,
दिन - दोपहरी में भी लगता
जैसे अन्धरी निशा है,
दिन के घुमलाये सपने भी पूछ रहे हैं
प्रश्न मौन के,
उत्तर देने वाली सुधिया
मुखर क्यों नहीं ?

सड़का पर हस्तान नहीं अब
बस - ट्रामों का चोर चल रहा,
दुकाना - बाजारा की हर धूप - छाह
ज्यो
अधियारे की गाठ छीनकर
धीमे पावा
उगियाले का चोर चल रहा,
पूछ रहे हैं कुछ तिनके
कुछ वण माटी के
उड आये जो साथ मौन के

बड़े शहर की पर गतिविधिया
मुखर क्यों नहीं ?

दूर, बहुत ही दूर वही से
लौट स्वयं के पास आ गया,
खोया - सा दरपनी - बिब कमरे का
मुझे आ गया,
तभी कुरेदे देते मन को
प्रश्न 'कौन' के,
धूल - धूसरित बल की सदिया
मुखर क्यों नहीं ?

क्षण पढ़ा न गया

रात पढ़ली गयी
दिन पढ़ा न गया !

दद नि सत हुए लेखनी से सभी
शब्द के मोदा मे
पा सके न धारण,
उन सभी को दिया सबलित विन्तु के
सूखते ही गये , ज्यो सभी
अश्रु - वण ,
बात पढ़ली गयी
सम पढ़ा न गया !

पास परिचित - अपरिचित सभी हैं
मगर
एक परिषय मधुर - मीन ऐकात से ,
हम रुके हैं वही
पथ पर हैं सभी
बोध लेते हुए यौन - सक्रान्त से ,
साख पढ़ली गयी
मन पढ़ा न गया !

फाइलो मे किये
आज नत्थी सपन,
दफ्तरो मे बुनें
रोज हम रात - दिन ,
अम्र पढ़ली गयी
क्षण पढ़ा न गया !

दमखम का गीत

आदमीपन से जुड़े हैं कुछ भवुके - श्रम ,
साथ में टूटी हुई निब की कलम ,
बस , हमारा तो यही दमखम ।

हम समय के लोग
जीते हैं अज्ञाने
अनजिये - से
और अनचाहे हुए क्षण ,
खोजते हर रात की
अधी - गसी में
रोशनी के कण ,
रूप के , हर रंग के , हर हृदय के
पास रखते दृष्टि के समय ।

भीड़ में रहते प्रवासी की तरह
अनभिज्ञ हो
हर शोर से,
दौर से गुजरें मगर
हम अनजुड़े हर दौर से ,
भावना जितनी प्रबल है
सबल उतना ही अह ।

प्रेम करते हैं मगर
अचित नही करते

उसे कहते नहीं,
 नाम के, यश के लिए हम
 शब्द बन जाते
 मगर मन से वहा रहते नहीं,
 शब्द है संकेत अपने
 अथ जीवन के नियम ।

12172
 31/12/2009

11-12-2009
 11-12-2009
 11-12-2009

कर्मचारी का गीत

एक लहर भी बाह न गहती, अनुबधित हम नहीं बून से,
ऐसे पानी में रहते हैं, जिसकी कोई सतह नहीं है !

सारे ज्वार और भाटे हैं
परिचित अपनी एक उमर से,
जैसे धूल धूसरित मलयज
होती है हर एक डगर से,

हम ही नहीं तैर पाते हैं, चुल्लू भर पानी के भीतर,
पावो से चलकर हम पहुँचे, ऐसी कोई जगह नहीं है !

महंगी बहुत आदमी के घर
रोजी से ऐसे दो रोटी,
जैसे किसी कर्मचारी के
बेतन से हो कमी कटौती,

कागज की सत्ता के शाश्वित, गलत किसी टिप्पण के भागी,
दो क्षण सुख की सास ले सकें, ऐसी कोई वजह नहीं है !

अपनी हर कोशिश कागज की
तह में मुड़कर यो मर जाती,
बीहड़ वन में ज्यो स्वर लहरी
सूनापन दूना कर जाती,

हर क्षण काली रात यहा पर, शाम, न कोई दोपहरी है,
सूरज करने लगा नीकरी, तब से घर में सुबह नहीं है !

सबधो की बेलें

सूरज की किरणें तो
पहिले से उजसी थी,
भीतर के कुहरे का
भलापन छटा नहीं !

सोते में साय रहे कुछ गघाते सपने ,
जब आस खुली पाया, हम रहे नहीं भपने ,
सबधो की बेलें
दीवारें लाग गयी
आगन के पोथे का
पीलापन मिटा नहीं,

आखो पर टगे रह भवचेतन के परदे ,
यह सोच कि कोई फिर आकर चेतन कर दे,
छोटी-सी दृष्टि भगर
पवत तक पहुच गयी ,
दुनिया की आखों से
भपनापन हटा नहीं !

भावुकपन से ज्यादा भालापन छला गया ,
लेकिन ऐसा होना अनुभव दे गया नया ,
सो थार गिरे , सभले
भीड़ों से बच निकले,
आपस की गुपचुप का
बहुवापन पटा नहीं !

जमी नहीं

यो जगह - जगह शापित होने से
अच्छा है,
जिसी जगह पर थिर हो जाना,
मैंने मन से कहा,
मगर उसने कुछ सुनी नहीं !

कटा-कटा-सा रहा स्वयं से
समझौतो ने जोड़ा,
मुझे समय की गूमी-बहरी
बस्ती में ला छोड़ा,
ऐसे क्षण सजायित होने से
अच्छा है,
नामहीन-बेघर हो जाना,
मैंने मन से कहा
मगर सीमाएं साथ रही !

उठे दृष्टि के रंग, सृष्टि पर
छाये रहे घुबलके,
बाहो के तकियो पर सोये
शाल नये मखमल के,
यो वार-वार शापित होने से
अच्छा है,
एक मौन, नि स्वर हो जाना,
मैंने मन से कहा
और मन बोला, अभी नहीं !

मन होता है

मन होता है

किसी जलती दीपहरी से जाकर कहूँ

प्रकेली क्यों जलती है ?

ला, थोड़ी आग मुझे दे दे

मैं ठंडा होने लगा हूँ ।

फिर कहूँ, मुन, इस कुलसते रेगिस्तान में

कोई नहीं चाहता जलते रहना ,

यहाँ बड़ी कीमत है एक थूद जल की ,

और मैं बाहुपाश में भरकर

चाहता हूँ जुड़ा रहना

आग से एक-एक पल की ,

उस आग से

जिसके नहीं होने पर

पानीदार मैं

स्वामि खोने लगा हूँ ।

निर्निमेष पलकें टिकाये

कटे-छटे आकाश के चमकीले टुकड़ों पर

प्यासे अंधरो से लोग

मागते हैं पानी

नहीं चाहते आग के फूल चुनना ,

मेरी मगर विवशता

हर बार पड़ता है मुझे
कोई आग का गीत बुनना ,

बुझा हुआ रहना नहीं चाहता
मेरा अतरंग ,
हर बार जलन चाहिए मुझे
मैं आजकल
दिन में भी सोने लगा हूँ !

कुछ भी नहीं सुनायी देता
कोलाहल के शहरीपन मे,

यह तुम मुझे कहा ले आये ?
इन जगहा पर उलटे पावो
चलना हाता
सीधे पांव मुड़े जाते हैं,
मेरे ही पदचिह्न दूर तक
मुझसे ही विछुड़े जाते हैं,

कुछ भी नहीं दिखायी देता
आकृतियों के घुपलेपन मे,
यह तुम मुझे कहा ले आये ?

हर अगले क्षण
लाशें होती हैं जीवन की
अपना सा कुछ कही न मिलता,
बहुदिस म टग रहे घुघलके
कोनों मे छिप रहे उजाले
किसी दिशा से सूय न उगता
किसी छोर पर चाद न ढलता,

सबकी प्यास जुड़ी रहती है
अधरी वाले कडुवेपन मे,
यह तुम मुझे कहा ले आये ?

जो नहीं बदला

समय की बात है
लोग शब्दों में भाग नहीं,
भाग में शब्द भरने लगे हैं !

सब जैसे तो बदला हुआ है
जो नहीं बदला
सब उसी के रोगी हैं,
और जो है, वह कुछ नहीं
घींकाने की कृति है
हम अपने किये के भुक्तभोगी हैं,
क्षणिकाएँ ही रह गयी हैं
चित्तन के क्षण
एक-एक कर भरने लगे हैं
विचार, असमय के पत्तों-से
भरने लगे हैं ।

कृति और कृतिकार के पहिले
परिचय का कोई क्रम है,
उसी क्रम से बढ़
अशेष - भ्रम है,
एक यात्रा, लेखन से मूल्यांकन तक की
पूरी है किसी वक्रोक्ति में,
कोई मौलिक भेद नहीं रह गया है

नकारने की वृत्ति और
स्वीकारोक्ति मे,
बुद्धेव चेहरे हैं भीड़ बने
बिसरने लगे हैं,
रग वष्ये हैं, उतरने लगे हैं ।

इस बार फिर

इस बार मैंने फिर
उस फूल का मन छुआ
और कहा, तुम्हें खिले ही रहना है !

फूल का गघायित होना ही
कोई बात नहीं
उसका अर्हनिश खिले रहना
प्राप्तो के लिए जरूरी है,
रूप का रग बिहीन होना भी
कोई बात नहीं
उसका किसी आकार में होना
आखों के लिए जरूरी है,

इस बार मैंने फिर
उठते हुए मन से कहा—
तुम्हें मौसम के अनुसार नहीं,
समय की हवा के साथ बहना है !

उसी समय मगर
घायी एक हलकी बयार
और बदल गया फूल का मन,
बह दूसरी-तीसरी दृष्टियों से बध गया
उसे भीतर की दृष्टि के विस्तार से
बड़ा लगा, सृष्टि का कानन,

इस बार मैंने फिर
बदल लिया निणय ,
घौर सूने में अतरंग से कहा —
सुनो , तुम्हें फूल का नहीं ,
कटीले फूल का हाथ गहना है !

छोटे-छोटे दर्द

देने को बहुत कुछ
मागो तो कुछ नहीं,
जितने उदार हम

उतने हैं रिक्त ।

बड़ी बड़ी घातो मे
छोटे - छोटे दर्द
कितना अमेल है
भीरत है आसमान
धरती है मद ,
कुठाए पाल रहे

दूबते हैं शक्ति ।

पाथो से छूट रहे
आयु व गाव ,
मन पर हैं लिख गये
गीत औ' प्रगीत तो
आला पर भाव
जहा जहा सम्पृक्त थे

वहा-वहा परित्यक्त ।

जाने को कइ वप
आने को एक क्षण ,

घरते हैं बार-बार
अभाव और पीडा का
सवरण,
जैसे गुलाम थे

वैसे हैं मुक्त ।

शब्दों के पहरे

कुछ भी कहा जाता नहीं
अघरो की डगोढी पर
शब्दों के पहरे हैं ।

हसने को हसते हैं
जीने को जीते हैं,
साधन - सुभीतो में
रीतो से रीते हैं,
बाहर से हहरे हैं ।
भीतर के धाव मगर
गहरे हैं ।

भीड़ भरी स्रष्टि में
डूबते हैं वही कुछ
न आरोह, न अवरोह,
हमको तो अपने प्रति
किये गये द्रोह से
अधिक रहा मोह,
पाहुन हैं दूर के
मेह-द्वार रूप के
धाये हैं, ठहरे हैं ।

रहते हैं सभी जगह
लिनु कभी अपने ही

सृजन का क्षण

ज्योही छुमा गीत ने कोई मन,
और ऋणी हो गया सजन का क्षण !

दृष्टि बाध के गहरे
पैठ गयी
कुछ त्रिबलमर आय,
बात पक्ति के भीतर
बैठ गयी
छद - छद मुखराये ,

ज्योही पहिचाने - अनुमाने ऋण !
और ऋणी हो गया सजन का क्षण !!

अनजाने परिचित-से
कही मिले
उलझे मन निबर गये ,
गभवती - कुठा के
द्वार खुले
कुछ निणय बहुर गये ,

ज्योही मिले डाल से शोमल वृण !
और ऋणी हो गया सजन का क्षण !!

दिशाहीन-प्रश्नों के घेरे

यह सुग वीन कम है मेरे लिए
कि दिशाहीन - प्रश्नों के घेरों में
कहीं नहीं हूँ मैं !

मुझको नहीं है किसी
पक्के प्रश्न के
सहज उत्तर की तलाश ,
अपने से मलग होकर
अपने को विज्ञापित करने में
मेरा बतई नहीं है विश्वास ,

इतना सतोष कम नहीं है
मेरे अकेलेपन के लिए
कि काव्य से सम्पृक्त होकर भी
शब्द पीटने वाले और
शब्द चित्रों के चित्तेरो में
कहीं नहीं हूँ मैं ।

उजालों के पीछे दौड़ना
आता नहीं है मुझे
और मेरी दोस्ती
तिमिरजयी - सवेरो से भी नहीं ,
भीड़ भरी दृष्टियो से घिरा हुआ
रहता हूँ मगर
सभी से नहीं मिलता हूँ हर कहीं ,

गीतो को पख मिले

गीतो को पख मिले
भावुक मन उछ चला खुले आभास मे,
शब्दों के कमल खिले
कचनवर्णी गद्य धुली वातास म ।

स्वर ने नहलाया कड़ियो को
फिर लय से जोड दिया,
ताला बे धर्यों के जल मे
हसा को छोड दिया,
हम तुम हो साथ चले
दो क्षण जीने उजलाये विश्वास म ।
गीता को पख मिले ॥

छाने ने किया समयमिit, हमको
माया ने रग दिया,
भावा ने उर मघा, बसक ने
कहने क ढग दिये,
वे दुर्दिन तभी टले
हूब गये हम कही क्षणिक आभास मे ।
गीतो को पख मिले ॥

परपरा से मिली चेतना
गति से पथ - पाव मिले,
नये बोध के नये शिल्प से
फिर साचे नये ढले,

अजाने - से रहो

दद को चुपचाप सहलो , सुख मिले तो मत कहो मन ,
अब अजाने - से रहो मन !

लोग हैं सबध के अनुबध तक को भूल जाते ,
फूल को , हर पाखुरी को , गध तक को भूल जाते ,
जो न चर्चित इस चमन में उस हवा का कर गहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

कागजी सब फंसले टूटी हुई निब से लिखे हैं ,
और यायावीय हैं जो कलम मे पहिले बिके हैं ,
फाहलो मे दब रहो पर कागजो मे मत बहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

स्वाध की इन परिवियो मे कद युग का आदमी ,
जो न पशु है , आदमी है , बस यही उसकी कमी ,
इस समदर की अबोली धार के सम सग बहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

ये शब्द किसे दे दू

ये शब्द किसे दे दू
जिसके कुछ अर्थ नहीं ?

कुछ शब्द पुराने हैं
सदियों-से नजल गये ,
कुछ शब्द विराने हैं
साचो से निकल गये ,
अनिव्यक्त करें मुझको
ये रहे समय नहीं ?

कुछ शब्द कोरा तक हैं
कुछ पाठ्य - क्रमो तक हैं,
कुछ शब्द आचलिक हैं
कुछ रुढि भ्रमो तक हैं,
ये बात नहीं इनसे
हो रहा अनर्थ नहीं ?

कुछ शब्द अघूरे हैं
बेताल - बेसुरे हैं ,
कुछ लय विहीन हैं तो
कुछ गूँगे - बहरे हैं ,
ये जितने व्यर्थ हुए
युग उतना व्यर्थ नहीं ?

या गल्प-कहानी में,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम अपने पानी में,

ये साथ मगर ऐसे
ज्यों अपने ही घर में,

खाती कक्षा वाले
सब परदे उधर गये !

शब्दों के गाने में
गति है पर ताल नहीं,
गीतों की महफिल में
कोई कन्वाला नहीं,

कुछ ऐसे गीत लिखे
सबसे ही अलग दिखे,

जो बिना कही गायें
मानस में उतर गये !

1

या गल - कहानी मे ,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम अपने पाती मे ,

ये साथ मगर ऐसे
ज्यों अपने ही घर मे ,

साली कदा बाले
सब परदे ऊपर गये !

सब्दों के गाने में
गति है पर ताल नहीं,
गीतों की महफिल मे
कोई कब्जाल नहीं ,

कुछ ऐसे गीत लिखे
सबसे ही अलग दिखे ,

जो बिना कही गाये
मानस मे उतर गये !

1

याता वे दुबड़ो म
या गत - कहानी म ,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम धपने यानी म ,

थे साथ मगर ऐसे
ज्यों धपने ही घर मे,

ताली बग़ा वाले
सब परदे उधर गये !

शब्दों के गाने में
गति है पर ताल नहीं,
गीतों की महफ़िज़ मे
कोई बज्वाल नहीं ,

फुल्ल ऐसे गीत लिखे
सबसे ही झलक दिखे,

जो बिना कहीं गाये
मानस मे उतर गये !

होने वाली सुबह का गीत

जहरीली हर गस धुली है, जीने की हर सास मे,
काले पखो वाले सपने उड़ते हैं आकाश मे,
असवारी - अफवाहो जैसी फँसी हुई अघेरी है !
सुबह मे कितनी देरी है ?

उजियाले की गाठ चुराकर भागे तन के चोर हैं,
मटमली छाया मे रहते नवयुग के सिरमौर हैं,
अभी कागजो की मानधता हर फाइन की चेरी है !
सुबह मे कितनी देरी है ?

सोने की चिड़िया रहती कच्चे सोहे के देश मे,
दूध दही की नदिया बहती, राजनीति - परियेश मे,
अभी मानवी - उलझावो की परतें कहा निबेरी है !
सुबह मे कितनी देरी है ?

बच जायेंगे विहंग, उड़ेंगे आक्षितिजी कित ओर से,
अभी राशनी बची हुई है, गनियारा की डोर से,
जीवन से भी अधिक विषमता गहरी और घनेरी है ?
सुबह मे कितनी देरी है ?

होने वाली सुबह का गीत

जहरीली हर गैस घुली है, जीने की हर सास में,
बाले पर्वों वाले सपने उड़ते हैं आकाश में,
घातवारी - अफवाहों जैसी फैली हुई अघेरी है !

सुबह में कितनी देरी है ?

उजियाले की गाठ चुराकर भागे तन के चार हैं,
मटमैली छाया में रहते नवयुग के सिरमौर हैं,
अभी कागजों की मानवता हर फाइल की चेरी है !

सुबह में कितनी देरी है ?

सोन की चिड़िया रहती कच्चे सोहे के देश में,
दूध दही की नदिया बहती, राजनीति - परिपेश में,
अभी मानवी - उलभावा की परतों कहा निचेरी है !

सुबह में कितनी देरी है ?

बय आर्मेगे विहग, उडेमे आक्षितिजी किस ओर से,
अभी रोशनी बधी हुई है, गनियारा की डोर से,
जीवन से भी अधिक विषमता गहरी और घनेरी है ?

सुबह में कितनी देरी है ?

गीत - यात्रा

बड़े शहर की बड़ी भीड़ के बोलाहल से दूर निकल ,
फिर गीतो के साथ चल ।

बुठा लिसियानी वाला बे पिता विरोधाभास हैं ,
छोटे भाई बहिन विसर्गति क्षोभ और सत्रास हैं ,
पहिले बिकी हुई कलमा की मजबूरी की राह बदन ।
फिर गीतो के साथ चल ॥

सुधिया यहा निपूती , सपने बेवस टूटी पाख के ,
युग दृष्टा हैं काले चश्मे पत्थर वाली छात्र के ,
पहिले बंद घरों के द्वारों की खुलवा दे हर साकल ।
फिर गीता के साथ चल ॥

दुधटनाए पड़ी जा रही सडक - छाप अलवार मे ,
कोई लिखता नहीं मगर सब छप जाता हर बार मे ,
पहिले दूटे हुए समय के लोगो की गुन ले हलचल ।
फिर गीतो के साथ चल ॥

गीत बहा तक ले जायेंगे जहा नीड उजियार के ,
क्षण - क्षण जुडते रहते मेले जीवन के , समिसार के ,
जहा प्रकृति के रूप मुखर हैं, कुछ भी नहीं जहा धूमिल ।
इन गीता के साथ चल ॥

अधा कुआँ

जो हुआ , मच्छा हुआ
हमन भी देख लिया
एगड़ा के गाव का

अधा कुआँ !

अब तो हैं छूट रहे पावो से
पगडडी - गेह - पाय ,
जा कुछ था , छोड़ बले
लीट हैं खाली हाथ ,

न बही टोकते
गवरीले - बाबुन ,
न बही रोकती
मटियाली कुआँ !

हमने ही बाहे नहीं
भाडी घर ,
छज्जे की धूप के
नये हेरफेर ,

असों से मीन था
भीतरी - सुआँ !

सर्पों के समाज

मीड में इस तरह बोलता है
हमारा दिशाहीन - स्वराज ,
जैसे उमड़ते हुए समुद्र में
कवर की आवाज

सहरें ही सहरें
जल ही जल
कही नहीं छोर,
रखते हैं
दूर - दूर तक फैली हुई दृष्टि
मगर हर तरफ श्वार
हर तरफ शोर ,
ऐसे चलते हैं साथ - साथ
आवाज
जैसे पानी के सर्पों के समाज

कंधों में मिले हुए कंधे
छिली हुई देह ,
सारी टकराहट के बीच
अपनी देह भी लगती है विदेह ,
ऐसे हो जाते हैं अपन से अलग
किसी से सम्पृक्त
जैसे कोई पड़ता हो
चोलाहल के बीच

घुमवार की नमाज ,
घौर दुहराते हैं बार-बार
अपना ही नाम
जैसे बुढ़ियाए - लाग
पुराना का राज

एक व्यग्य-गीत

मुछ भी नही बना तो हमने
धातो के टुकड़ो म
भीरो को दी लात गाविया ।

साजिश थी कोई जो हमने
अपनो की सब चुनी खामिया
पहिचाने - से दोष निजाले ,
कसी पन्धिया, व्यग्य फेर कर
धुनते रहे दृष्टि के जाले ,
फिर भी, नाटक नही हुआ तो
चौराहे पर नगे होकर
मानी अघहीन - धातो पर
पिटवाते हम रहे तालिया ।

इस पीढी से उस पीढी तक
हम ही छाये रहे कि हमने
रोज अलग से घेरे डाले ,
और मच्च पर हूट हुए तो
ग्राम सभा मे पहुच हाथ म
उठा लिया फिर ऋद्धे काले ,
फिर भी , नेता नही बने तो
अखबारो मे राजनीति की
राजनीति म अखबारो की
उलझाते हम रहे फालिया

अधी दौड

कितनी अधी है यह दौड ?

उठती हुई घूल की

चाहो मे लिपटी - सी

भटमेली आकृतिया

आयी हैं पिछनी

सतहो को छोड !

रेत जैसे इनके चिबने और

नही तरासे गये चेहरो पर

दिना तक मसी गयी सबीर ,

आग जैसे इनके सोखले घदनो से

उतरा हुआ बीर ,

सब तरफ मरु-स्थलीय खड

कही नही नीर ,

और यह लोग पीते हैं

मार - मार

अपनी ही देहा को

निचोड - निचोड ।

कोई नही आकृति

कोई नही राग ,

मलवे के नीचे है दबी हुई

आग ही आग ,

रक्तहीन - देहा म

हड्डिया को जीने की

सगी हुई होड ।

मरुथल के फूल

गधहीन हैं मगर
कितने नुकीले हैं
मरुथल के फूल !

कई-कई खड़ा के
बड़े - बड़े खड ,
चितकाए रखते हैं
कटे हुए पावा से
पिछले पालड ,
कैसे हैं लोग ये
बुहराते बार बार
गहरी परिवेश में
गावों की भूल !

न कोई राग
न कोई लय ,
चेहरा पर लिख गये
अव्यक्त भय ,
असमय उड़ती है
भित्तिजो के पार-द्वार
तिनकों को साथ लिए
गदलायी धूल !

गघाते झूल

झरते हैं पून - पात
हाली से ,
गघाते झूल हैं
मौसम की गानी से !

एष नहीं गघ
एष नहीं राग - रग ,
सबके हैं गिस्ने के
भलग - भलग डग ,
वृक्षों के हाल चाल
पूछें क्यों माली से ?

सूखे - से उपवन मे
मलयज के गीत ,
लगते बेमाने - से
अथहीन - लय के
वाग्दहीन - सगीत ,
घलता है कामकाज
अक्षरा के राज मे
शब्दों के हल्लो से
अर्थों की ताली से !

सक्रान्त की बारहखड़ी

लो, मैं स्वयं ही कैद हो जाता हूँ
मीन व ताले जड़े कदा म,
न धर्यों में बोलता
न दासों की मुनता
और सब क्या माने हैं
ऐसे सवादा क ?

हर रोज पहिले से और
घुपल जाती हैं
सामोप्य की आकृतियाँ,
अल्पज्ञाता के बीच
भूतयावित्त हो रहे हैं
बीने व्यग्य, लगड़े ठहाके
एक आल वाले सतीफ
और मौलिक कृतियाँ भी
लगती हैं अनुकृतियाँ,
कसे समव है सब सतहों पर
एक-सा हो लूँ,
भीतरी परतें खोलूँ ?
और सब क्या माने हैं
इन मौखिक विवादों के ?

सब रह गये हैं जागी के कवहरे तक
कोई नहीं पढ़ता सक्रान्त की बारहखड़ी

गिरवी है युग-मृत्या पर
 किसी नामहीन - घड़ीसाज के
 समय की घड़ी ,
 दौड़ रहे हैं भीड़ से कहवापरा तक
 असमय के यज्ञ , प्रणाम ,
 उगनिया तब रह गये हैं
 प्रनामों के नाम ,
 भीर भय क्या माने हैं

बड़ीरो भीर प्यादो के ?

दृष्टि का रेगिस्तान

उस समय से सृष्टि में है
हर आदमी अनमोल ,
कठिन जब से क्षणों का इतिहास ,
सरल जब से सास का भूगोल ।

दो विषय विस्तार में
खोया हुआ हर ज्ञान ,
ध्या द्वार पर ठहरा उमर का
मानसूनी - क्षण
पाव से लिपटा किसी की
दृष्टि का शुष्क रेगिस्तान,

उस समय से डरकते हैं
युग के अंधार से बोल ,
कठिन जब से श्रृणा का इतिहास ,
सरल जब से प्यास का भूगोल ।

पवनों के बोझ के
नीचे दबे या प्रान ,
घान के होते हुए उधो काड से
मिलता नहीं हो घान ,

उस समय से दे रहे हैं
हम भुक्तता का मोल ,
कठिन जब से तृणों का इतिहास ,
सरल है मधुमास का भूगोल ।

कई-कई बार

पहिले भी भाये हम
सगता इस सतह तक
घोर लौट गये हैं

कई-कई बार !

बच्ची सी डोर मे
गूँथे थे मालिन ने
फूलो से रात - दिन,
सध्या तो याद नहीं

रात के बटोही हम
भाये थे सुबह तक
लौट हैं फेंक कर
बूझतरो को ज्वार !

यानी हैं, लौटेंगे
सध्या तक गाव ,
अपनी न कोई प्रतीक्षा
न कोई विराव ,

नदिमा से लौटे हैं
अपनी जगह तक
शीश लिए
पानी की धार !

सदभंहीन - आदमी

हम वह क्यों नहीं हुए ?
एक प्रश्न हर बार दुहराता है मन
और रह जाता है मौन
निरुत्तर
क्षीपकविहीन - आदमी - सा ।

सारी बड़बुहाहटों के बीच
जन्मता है एक शब्द - बकवास ,
फिर उसी से हो जाते हैं
सम्पृक्त , कई - कई शब्द
कुठा - विक्षोभ - आक्रोश - विरोधाभास
और अंत में सन्नाह ,
हम अर्थों में क्यों नहीं गए ?
एक प्रश्न हर बार क्षोभता रहता है मन
और हर क्षण
हो जाता है प्रकारांतर
विकल्पहीन आदमी - सा ।

चिन्तन में पँठ जाता है दशन
वरपना और यथाथ
हो जाते हैं एक रूप ,
तीव्रानुभूतियों की यो होती हैं
सहजामिव्यक्तियाँ
चित्रान्वित रहती हैं चेहरो पर छाह

पृष्ठांकित हो जाती घुष ,
 आखिर हम लिखते हैं किसके लिए ?
 एक प्रश्न द्वयता - उत्तरात्मा है मन
 और मन और भावना के बीच
 रहता है दिशान्तर
 समय से दूटे
 दिशाहीन - सदाबहीन आदमी - सा ।

१ एक यात्रा नियुक्ति से

मत्थी होते गये कागज
एक के बाद एक
फाइल में
और आदमी होता रहा अलग
हर बार अपने से ।

एक यात्रा, नियुक्ति से पेंशन तक
पढ गया एक क्षण
कहानी की तरह,
और हो गया निवृत्त
बचपनी - खिलौने तोड़कर
दिशाहीन जवानी की तरह,
अकारण जुड़ती रही कलम
दफ्तरी मसले के
कच्चे सपने से ।

टण्डर, खरीद और बिल
सरकती हुई भुगतान की तिथियाँ,
निरर्थक क्षणिकाएँ
अनावश्यक भाग-दौड़
गलत दृष्टियाँ,

सब को मिलता है सुख
दूसरो के कल्पने से !

२ आयोजना के वशज

पुत्र है परिपत्र के
सूरत प्रपत्र - सी,
आयोजना के वशज हम
शब्दों के साक्षी
भावडा के योग !
निर्धारित माग से
होकर ही चलते हैं
करते हैं मगर
आशिक अतिक्रमण !

पहिले पृष्ठाकन
रूपाकन - अनुमोदन
और फिर स्थानांतरण ,
लिखते अभाव है
पढ़ते अभियोग !

रचते हैं रोज रोज
शब्दों के चक्रव्यूह
मारते न अभिमन्यु को
करते निलम्बित ,
मगर प्रकरण
रहते हैं विलम्बित
जो हो जाते हैं अत म
प्रत्यास्थापित ,
आदेशा की वस्ती म
आदेशों के लोग !

आ गए दपनर, हुआ तब शांत यह
साथ हैं सब ही
मगर फिर आज अपनी जिन्दगी
अवकाश पर है !

कलम भी निव नयी है
दावात में भी खाल स्याही,
फाइला में डेर सारी
बद हो हस्ताक्षर भी
दे सकेंगे बल हमारे
बाम करने की गयाही,
हैं सभी तो
एक सजली दृष्टि वाला मन मगर
संयास पर है !

प्रूफ सन्निधक जमर के
दृष्टि में कैसे करें हम
मूल सन्निधन ?
बाम अपना सब डिलिट है
जुड़ गये हैं साथ अपने
लैस - स्पेस, फिर कंमि कंटेनर,
आज सचमुच, नौकरी
युग के किसी क्रास पर है !

४ कुत्तियों से कुत्तियों तक

घर में घर रहता है
दफ्तर में दफ्तर भी नहीं,
कहीं खोजू अपनी दृष्टि
कौन - सी फाइल में ?

आदमी कुर्सी - मेज से मिलकर
हो जाता है कागज
और उस पर लिख जाते हैं
अथहीन टिप्पण,
मन के खुले आवाज में
उड़ने वाला विह्वल
पक्ष ढट जाने के बाद
जीता है, नहीं जीने वाले क्षण,
साफ - साफ कैसे देखू
अपनी भी दाकल
इस काले - जल में ?

सब किये को
अनकिया कर देता है
आकस्मिक - अवकाश,
उपार्जित अवकाश में
असमय ही मर जाता है
आदमी के भीतर के आदमी का
आदिम विवास,
[कहीं नौकरी से निवाल नहीं दिया चारु ?]

सब तरफ है छाया हुआ
कुर्सियो से कुर्सिया तक
एक नीलापन ,
फोई फक नहीं है घुटन मे
गरल मे !

दूसरो पर छा जाने का गीत

गलिया से निबला
कि चोराहे - सा बतियाने लगा ,
माहोल देखा और मैं गाने लगा ,
दूसरो पर छाने लगा !

छापता रहा तमाम दिन
सत्ता - राजनीति और भत्रियों के
गलत - सही समाचार ,
सडका - पान की दुकानो
मित्रो और कहवाघरो मे ,
बादता रहा पत्र की प्रतिया
काँफी के प्याले मे
सिरघरो मे , सिरफिरा मे ,
मैं कितना बदल गया
कही कोई कच्चापन देसा
और उसे गीत का अर्थ समझा ६,
अपनी दुकान जमाने लगा !

मगर सब किया व्यर्थ हो गया
जब अर्थ की बात पर
गाड़ी रुक गयी ,
पैसे दिखा और प्रतिमा चुक गयी ,
तब फैसले सुनाने लगा
और किसी ने नहीं सुने तो
सीटिया बजाने लगा !
मैं कितना बदल गया १

इस ओर

था , तो बहुत कुछ था कमी
अपनो सा एक एक क्षण,
किसी सम्मोहन से जुड़ा
मन , आत्मविभोर !

और अब पड़ोमी के घर
उठा है राजनीति - सा शोर !

मैं अब भी मौन रहूँगा
मुखर के सामयिक - सुखों को
छुपचाप सहूँगा ,
लोग जब शब्द - रचना करेंगे
मैं अब भी बहूँगा ,
मन कहता है , मत बोल
छुप रहने का है यह दौर !

एकदम उतर गये हैं
शब्दों के रंग
अजीब लगता है लिखना
काजल और आँखों की वोर ,
कोई गाना पसन्द नहीं करता
बासी रिश्ता के सदम—
कहीं खेतों में उगती हागी और
शहरों में तो दृष्टि के पार तक
बुढ़रा छाया रहता है हर ओर

सुनो, ग्राम लोगो की समझ
अब हो गयी है विशोर ,
इस ओर ।

फागजी - घोड़े का गीत

तेरे फागजी - घोड़े के
बघी पाया के तले
गुरताल ही नहीं !
गरपट दीबेगा कैसे यह
जिसकी दुनिया भ भगनी - सी
घोरे चाल ही नहीं !

वाहे पट्टे बडे जोर से , दूटी - सी सगाम ,
तंग राम, हरिराम आया जीवन में न याम ,
जिनकी तू सवारी भरता
उनकी प्रस्तुतों मे
समाल ही नहीं !

गधे गीइत तेज बहा घोड़े कैसे दीडें ?
या तो मालिक को डोए या भपना पथ मोडें ,
फाइलो की बच्ची सडकें
आदमी फलम का
तुझे खयाल ही नहीं !

बिस्कुट मिले घास के बदले, जल के मिस बॉफी ,
भूख बच्चों के पापाजी बबा रहे - टापी ,
कसे भी तू हाकले रे
आनवर को होता पर
मलाल ही नहीं !

पथरीली सतहो तक

पहिले जो जैसा था
वैसा भव रहा नहीं,
पगडंडी से लेकर पथरीली - सतहो तक ।

अधी - आखो वाले
सब समकदार चश्मे,
गुग दृष्टा बन बैठे
कुर्सी के सरकस में,
देखा तो बहुत मगर
मन ने कुछ कहा नहीं,
उन लगड़ी बातों से इन गूमी बजहा तक ।

चर्चाएँ चलती हैं
शहरी आवादी से,
आवाजें दबती हैं
गावों में खादी से,
सहते ही आये हैं
बोलो, क्या सहा नहीं ?
मटमली राता से घुबलायी सुरहो तक ।

संस्था में लिखे हुए
सपने निर्माणा के,
शब्दों में बने हुए

नयने गतिहाता वे ,
धारा ता एव मगर
हर मोर्द बहा नही,
गता की मेरा से दपार की जगहों तब ।

प्रलय के लिए

भूख के आबड़े गिन सको ,
बूढ़ हर प्यास की चुन सको,
तब कहो तुम समय के लिए,
और जीवित प्रलय के लिए,

शब्द बोलो वही आग हो ,
आग में भी कही राग हो ,
राग की गूँज हर ओर हो ,
और स्वर भी न कमजोर हो,
तब कहो तुम प्रतीक्षानिरस्त
सात के हर विलय के लिए !

खींच दो वह अमिट रेखा हो,
रेखा में रंग का लेख हो ,
एक नक्शा उजलने लगे ,
साथ हर व्यक्ति चलने लगे ,
तब कहो तुम सड़े हो यहाँ
आदमी की विजय के लिए !

लोक का तब गलहार हो ,
तब का एक व्यवहार हो ,
आस की किरकिरी दूर हो ,
एक कार्द न मजबूर हो ,
तब कहो तुम जले आग में
के ह उल्टे के लिए !

बिम्ब के उभरने तक

दरपनी - अघेरे

उजली - सी रेखो के सावरे चितेरे,
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?
सामने हैं दरपनी - अघेरे ।

ध्याया - सी चल रही
धूलि - वण बुहारती
सडको की भीड़ ,
पावो से छूट रही सतहे
जुड़ने को आ जुड़े
पम्पियो के नीड़ ,
जागने को एन रात , सोने को अनगिन सबेरे ।
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?

सठियायी - बुद्धि के
मिमियाते - लोग
साथ लिए कटुता की आग ,
डसने को भातुर हैं
कुण्डलिया मारे
कुठित - अनुराग ,
सर्पों से ज्यादा हैं जहरी सपेरे ।
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?

मोसम को बाट रहे
पीढियो के माह ,

भटक रहे ठाँव - ठाँव सम्झी - सी उम्र के
अपनी ही द्रोह ,
सपना वो करते हैं गुप्तियों के भेरे ।
बिना वहाँ उतरेंगे तेरे ?

पानी का गीत

पानी के दण्ड पर यो ककरी न मारो
मिवा का जीवन बिखर जायगा ।

पानी के ऊपर भी
बहता है पानी ,
पानी के भीतर भी
रहता है पानी ,
सागर के पानी को हाथों से तोला तो
महरों का कवन उतर जायगा ।

सभव न पानी के
पानी को आकना ,
लगता छ्यो अपने ही
भीतर में भाकना ,
यौवन को दोषों की आखों से देखा तो
परदे का बचपन उघर जायगा ।

खारा या मीठा हो
पानी तो पानी ,
हो गदलाया, फिर भी
सजल है कहानी ,
मोती तलाशोगे, निर्जल की तहों में तो
दल - दल का दशन उमर जायगा ।

फई - फई बिब

उभरे थे एक साथ
दण्ड मे बिब कई,
सबको एव बर गई
धूलि की परत !

रूप - रंग , रास - रस
गंध - नाम ,
सब का एक परिचय है
धनिया के गाव की
चम्पई शाम,
बाहो म सिमटा है
आजकल
जीवन की चाहो में
सब बिगत
और अनागत !

लाल हुए सूरज की
हारी धकी देह ,
लौटी है दूर से
पानी के गेह ,
पड़ता है सूय रोज
गामिनी की पाती में
चाद की लिखत !

पर्वत की भोर

ऊँची पहाड़ी पर
बेल रहा बाल - रवि
कमसित - पहाड़िन की
गोरी हथेली पर !

किरणा के घेरे में
गोला एक आग का
उछल रहा ,
जैसे गोद ममता की
लेने सिलौने को
कोई शिशु मचल रहा ,
उलझे हैं तार तार
प्रेम की पहेली पर !

पक्षियों के नींदो में
जग आया क्षोर ,
सागर में डूब गई रात
चढ़ रही है भीड़ियाँ
पर्वत की भोर ,
यौवन का रंग चढ़ा
निजल के गाव की
गूँगी सहली पर !

बिब के उमरने तक

सोचता हूँ ,
हर बार यही सोचता हूँ
ऐसे जीने से तो ---
घोर फिर एक पर्यार
अपनी जगह से हिल जाता है
हरादा बदल जाता है

घपनी बान भी लगती है
 झूठ, सरासर झूठ,
 सोचा है, इस तरह हरे घाव सीने से तो
 भीर फिर पीपस के नया पत्ता निबस जाता है
 बुल्ल सोया - सा मित जाता है !
 दरादा बदल जाता है !

बिब के उमरने तक

सोचता हूँ,
हर बार यही सोचता हूँ
ऐसे जीने से तो --
और फिर एक पत्थर
अपनी जगह से हिल जाता है,
इरादा बदल जाता है ।

ये घुमावदार रास्तों का
चितकबरा शहर,
ये और-और तरह के लोग
ये छोटे-छोटे ऊँर,
भूख-प्यास की तरह साथ रहने लगे हैं
हर पहर,
सोचता हूँ,
इस तरह अपनी जवानी पीने से तो
और फिर कोई धुधलाया-दण
उजल जाता है,
एक बिब और
दण में खिल जाता है,
इरादा बदल जाता है ।

कमी-कमी अपने रास्ते भी
पावा से जाते हैं टूट,

अपनी जान भी सगनी है

मूठ, सरामर भूठ,

गोपना हूँ, इस तरह हर घाय सीत से तो

घोर फिर पीरस के गया वसा गिरस आता है

गुप्त ताया - सा भिन्न जाता है !

इरादा बदल जाता है !

तारादत्त ' निर्विरोध ' का प्रकाशित साहित्य

काव्य कृतिया

मेरे गीत तुम्हारे आसू
रूप रंग-गरछाड़िया
दद का सौदागर
युग-युग के दिनमान
वैयक्तिक सतहों पर हम
आप्रे
योजना के गीत
गांधीजी के उत्सव

कथा

यमद्वितीया

उपन्यास

प्यासा लौट गया पनघट से

सम्पादित

युग बोध [साहित्यिक-संकलन] मुकुट मकमेना
युग चिन्तन [साहित्यिक संकलन] के साथ
सचेतिका [त्रैमासिक]
याम-१ [एक अनियतकालीन पुस्तक-परिचय प्रकाशन]
नीरव के साथ

व्याख्य

यग के पीछाड़े

